LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 3: कर्मयोग

3/3 (श्लोक 27-43), शनिवार, 08 मार्च 2025

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/GvEiBKE0rXE

आत्मसंयम द्वारा भगवद् प्राप्ति

दीप प्रज्वलन, श्रीकृष्ण वन्दना, हनुमान चालीसा एवम् श्री गोविन्ददेव गिरिजी महाराज जी के चरणों में गुरुवन्दना के साथ आज के विवेचन सत्र का प्रारम्भ हुआ।

हम श्रीमद्भगवद्गीता का कर्मयोग का अध्याय देख रहे हैं। यह अध्याय अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। कर्मयोग का आचरण करने के लिए इससे पहले किसी स्थिति तक पहुँचने की आवश्यकता नहीं है। कर्मयोग का आचरण हर कोई कर सकता है। इसे आचरण में लाने से हर मनुष्य वही प्राप्त कर सकता है जो ज्ञानी मनुष्य प्राप्त कर सकता है।

अर्जुन ने श्रीभगवान से प्रश्न पूछा, हे केशव! जब ज्ञान इतना श्रेष्ठ है तो आप मुझे युद्ध जैसा काम करने के लिए क्यों प्रेरित कर रहे हो? ऐसा पूछने पर श्रीभगवान ने अर्जुन को कर्मयोग का महात्म्य बताया।

सबसे पहले तो उन्होंने यह महत्वपूर्ण बात बताई कि कोई भी जीव बिना कर्म किए नहीं रह सकता। उसे कर्म करते ही रहना पड़ता है और किस प्रकार के कर्म करने से वह कर्म, कर्मयोग में परिवर्तित हो जाता है। उसकी युक्ति श्रीभगवान, अर्जुन को बताते हैं।

श्री भगवान ने अर्जुन से कहा -
हर जीव का जन्म होते ही उसके साथ उसके कर्तव्यों का भी जन्म हो जाता है।

यज्ञ:- यह सङ्कल्पना जो भगवद्गीता में बताई गई है। निष्कामभाव से हम जो कर्म, कर्तव्य करते हैं तो वह यज्ञ हो जाता है। अपने कर्तव्य, कर्मों को निभाना ही यज्ञ है। हम अपने कर्तव्य, कर्म किस प्रकार से निभाएँ।

श्रीभगवान ने अर्जुन से कहा- जनक आदि राजाओं ने भी इस प्रकार से परम सिद्धि की प्राप्ति की है तो हर कोई इस सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। असक्त होकर जो कार्य है, कर्तव्य, कर्म है, तुम उन्हें आचरण में लाते रहो। आवश्यकता न होने पर भी कर्तव्य करते रहना चाहिए। जैसे श्रेष्ठ लोग आचरण करते है और बाकी लोग उनका अनुसरण करते हैं। इसलिए कर्म करने की आवश्यकता न होने पर भगवान भी तो कार्य करते रहते हैं।

श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि मुझे क्या करना है जो मुझे प्राप्त नहीं हुआ है और ऐसा भी कुछ नहीं है और जो मुझे प्राप्त करना है। मैं परिपूर्ण हूँ और मेरे लिए कोई कर्तव्य बचा भी नहीं है फिर भी मैं सारे कर्म कर रहा हूँ।

जो गाय चराने का भी काम करते हैं घोड़े हाँकने का भी काम करते है, जूठी पत्तल उठाने का भी काम करते हैं, जो भी कर्म कर्तव्य के रूप में आते हैं वह सारे कर्म स्वयं श्रीभगवान करते रहते हैं।

इसलिए श्रीभगवान का यह उपदेश आज भी उतना ही उपयुक्त है जितना की 5000 वर्ष पूर्व था। वही नित्य-नित्य नूतन और शाश्वत ज्ञान श्रीभगवान ने अर्जुन को बताया।

श्रीभगवान कहते हैं कि इस बात को समझ लेना है, जैसे कर्म से कुछ प्राप्त करना है तो आसक्त होकर कर्म करते रहना हैं। इस प्रकार ज्ञानी भी इसी प्रकार उत्साह के साथ करते रहे हैं उन्हें भी कुछ प्राप्त नहीं करना है तो मैं कैसे भी कर्म कर लूँ, यह भाव नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार एक आसक्त व्यक्ति फल की इच्छा रखते हुए जिस तरह से पूर्ण उत्साह से कर्म करता है वैसे ही कर्म करते रहना चाहिए।

आसक्त होकर करना चाहिए और लोगों के कल्याण के लिए करते रहना चहिए और बुद्धि भेद निर्माण नहीं करना चाहिए। सभी को कर्म करने के लिए प्रेरित करते रहना चाहिए। अच्छा कर्म आसक्त भाव से कैसे किया जाता है। किसी की बुद्धि में बुद्धि भेद निर्माण नहीं करना चाहिए। यदि वे नासमझ है और उन्होंने कर्मयोग नहीं पढ़ा है, उन्हें बार-बार नहीं बताना।

भगवद्गीता स्वयं को आचरण में लाने के लिए है। इसलिए हम उस कर्म को करते जाएँ यही महत्वपूर्ण है। वैसे भी यदि हम कर्म करते हैं तो उन्हें कौन करवाता है? वास्तव में यह बात समझ लेना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मैं कौन हूँ? यह दूसरे अध्याय में श्रीभगवान ने अर्जुन को बताया है कि क्या हम यह शरीर है? मेरा हाथ, मेरे पैर, मेरा शरीर। जब मैं ऐसे शब्द प्रयोग करता हूँ तो मैं आँख, हाथ, पैर नहीं हूँ परन्तु मेरा शरीर, ऐसा शब्द प्रयोग करता हूँ। मैं शरीर नहीं हूँ तो मैं कौन हूँ? इसको जानना है।

हमारा शरीर प्रकृति से बना हुआ है। हमारा स्वरूप, आत्म स्वरूप है, चैतन्य स्वरूप है। जिनकी उपस्थिति के कारण चैतन्य रूप में है। इसलिए शरीर द्वारा यह कार्य हो रहे हैं।

जब किसी की मृत्यु हो जाती है तो हाथ, पैर, आँख, कान सब वैसे ही रहते हैं परन्तु वह न बोल सकता है, न सुन सकता है, न चल सकता है क्योंकि उसका चैतन्य के साथ सम्पर्क टूट जाता है।

हमारा स्वरूप, चैतन्य का स्वरूप है न कि देह का। हम देह में रहते हैं, हम देह नहीं है और कार्य देह के द्वारा किया जाता है। श्रीभगवान इसी बात को भलीभाँति समझाते हैं। श्रीभगवान कहते हैं -

3.27

प्रकृतेः(ख्) क्रियमाणानि, गुणैः(ख्) कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा, कर्ताहमिति मन्यते॥3.27॥

सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं; (परन्तु) अहंकार से मोहित अन्तःकरण वाला अज्ञानी मनुष्य 'मैं कर्ता हूँ' -- ऐसा मान लेता है।

विवेचन:- हमारा शरीर प्रकृति का बना हुआ है। पञ्चमहाभूतों की प्रकृति, पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि, उसके साथ-साथ मन बुद्धि और अहङ्कार- यह सब मिलकर हमारा शरीर बना हुआ है।

यह सब प्रकृति ही है और प्रकृति तीन गुणों वाली है। इसका वर्णन चौदहवें अध्याय में है।

सत्त्व, रज और तम।
यह प्रकृति इन तीन गुणों की बनी है और इन्हीं तीन गुणों के कारण ही प्रकृति का कार्य चलता है। इन तीन गुणों का प्रमाण, जैसे-जैसे कम ज्यादा होता है उसी अनुसार उस शरीर द्वारा कार्य (कर्म) होते हैं।

शरीर द्वारा यह कर्म होते हैं, जैसे आँखों से देखना, कानों से सुनना, पैरों से चलना। चलने का कार्य पैरों ने किया, देखने का कार्य आँखों ने किया। इसका अर्थ है यह सब प्रकृति द्वारा किया हुआ कार्य है। व्यवहार में बोलने के लिए, जैसे मैं चल कर आया। मैं सुन रहा हूँ, मैं बोल रहा हूँ, मैं खा रहा हूँ। ऐसे शब्द प्रयोग करते हैं। यह सब व्यवहारिक रूप से तो ठीक है लेकिन साधना के मार्ग पर चलते समय या सामाजिक कार्य करते समय, मैंने किया, मैं करता हूँ, यह भाव यदि आ जाता है तो अहङ्कार हो जाता है।

इसलिए **"मैं"** की व्याख्या करते समय दो प्रकार के मैं आ जाते हैं। एक है **कच्चा मैं** और एक है **पक्का मैं।** कच्चा मैं यानि शरीर के साथ जो मैं समझता हूँ। इसलिए मैं बोल रहा हूँ, मैं सुन रहा हूँ।यह व्यवहारिक रूप में है। यह सही है। लेकिन साधना के मार्ग पर जब मै स्वयं को जानने का प्रयास करता हूँ तो वह चैतन्य हूँ। शरीर नहीं हूँ। मैं इन्द्रियाँ नहीं हूँ, मैं मन बुद्धि नहीं हूँ, मेरा शरीर है, मेरा मन है, मेरी बुद्धि है, ऐसा कहने वाला मैं चैतन्य स्वरूप हूँ।

वह कार्य नहीं कर रहा। वह चैतन्य की उपस्थिति में शरीर द्वारा जो कार्य हो रहा है इस बात को जानना है लेकिन हम अहङ्कार के कारण स्वयं को शरीर समझते हैं इस कारण इसे देहात्म बुद्धि कहते हैं। मैं ही देह हूँ, हमारी ऐसी धारणा होने के कारण हम अहङ्कार से विमूढ़ हो जाते हैं। अज्ञान में फँस जाते हैं और मैं कर रहा हूँ ऐसा मानते हैं और हमेशा इसी भाव में रहते हैं।

यदि कर्म योग की साधना करनी है तो इस भाव का त्याग करना आवश्यक है। जब यही समझ कर कि यह कार्य मैं नहीं कर रहा हूँ यह समझ कर जब मनुष्य कर्म करने लगता है तो वही मनुष्य धीरे-धीरे अपने स्वरूप को पहचानने लगता है।

एक बार एक जेब कतरा पकड़ा गया तो कहने लगा कि मैंने श्रीमद्भगवद्गीता में पढ़ा है कि मैं कर्ता नहीं हूँ। यह कार्य प्रकृति द्वारा होता है। यह मैंने नहीं किया है। पुलिस वाले भी समझदार थे। उन्होंने कहा कि मैं भी तुम्हें सजा नहीं दूँगा। तुम्हारे शरीर को सजा देता हूँ।

शरीर और मैं इन दोनों बातों को जानना आवश्यक है। जो इस बात को जानते और समझते हैं उनको तत्ववेत्ता कहते हैं।

तत्व को जानने वाले - तत्व ज्ञानी।

उनकी कैसी धारणा रहती है श्रीभगवान यहाँ बताते हैं-

3.28

तत्त्ववित्तु महाबाहो, गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त, इति मत्वा न सज्जते॥3.28॥

परन्तु हे महाबाहो! गुण-विभाग और कर्म-विभाग को तत्त्व से जानने वाला महापुरुष 'सम्पूर्ण गुण (ही) गुणों में बरत रहे हैं' -- ऐसा मानकर (उनमें) आसक्त नहीं होता।

विवेचन:- परन्तु जो तत्ववेत्ता है, तत्व ज्ञानी हैं वे कहते हैं कि प्रकृति में भी एक गुण विभाग और कर्म विभाग है।

त्रिगुणात्मक प्रवृत्ति के तीन गुण हैं- **सत्त्व, रज, तम**

इन गुणों का एक विभाग है और इन गुणों के द्वारा होने वाले कर्म, यह दूसरा विभाग है।

सत्त्व गुण के द्वारा सात्त्विक कार्य होते हैं। रजोगुण के द्वारा मनुष्य की लालसा और लालच बढ़ता है। वह दौड़-धूप करने वाले कर्म करता है और तमोगुण में मनुष्य आलस में पड़ा रहता है।

यह गुण विभाग और उसके द्वारा होने वाले कर्मों के विभाग, इनके द्वारा अपने सब काम चल रहे हैं जो शरीर के कार्य हो रहे हैं वह इन्हीं गुणों के कारण हो रहे हैं।

सुबह उठकर हमें अच्छे कर्म करने की, योगाभ्यास करने की इच्छा होती है। दिनभर हम अपने व्यापार का कार्य करते है। रात को मनुष्य थक कर नींद में चला जाता है।

जो ज्ञानी है वह इन बातों को जानता है। अपने गुणों के द्वारा ही ऐसे कार्य इस शरीर द्वारा हो रहे हैं।
साक्षी भाव से अपने शरीर द्वारा होने वाले इन कर्मों को वह देखता है और जानता है कि गुण अपना-अपना काम कर रहे हैं।

यदि सत्त्व गुण कार्य कर रहा है तो भगवद्गीता पढ़ने की इच्छा हो रही है। रजोगुण प्रभावित हो जाता है तो कुछ मनोरञ्जन करने की इच्छा होने लगती है। तमोगुण प्रभावित होता है तो आलस्य निद्रा में होने की इच्छा होती रहती है। इसी प्रकार गुण अपना-अपना काम कर रहे हैं।

इसी बात को जानकर जो ज्ञानी है इसमें अटकता नहीं है। शरीर द्वारा होने वाले कर्मों को वह साक्षी भाव से देखता है। श्रीमद्भगवद्गीता हमें अपना स्वयं से परिचय करवा देती है। इसलिए हमें अपने शरीर के द्वारा होने वाले कर्मों की ओर साक्षी भाव से देखने के लिए श्रीभगवान अर्जुन को यहाँ बता रहे हैं कि हे अर्जुन! तुम एक साक्षी बनकर देखो कि तुम्हारे शरीर द्वारा कैसा काम हो रहा है और क्या होना चाहिए। यदि हम इसे देखेंगे तो हम अपने कर्मों की ओर लगेंगे।

इसलिए आचार्य आदि शंकर जी कहते हैं-

मनोबुद्धयहंकार चित्तनिनाहम्
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायु:
चिदानंदरूप: शिवोहं शिवोहं।।

मैं कान नहीं हूँ, मैं नाक नहीं हूँ, मैं जिह्वा नहीं हूँ, मैं त्वचा भी नहीं हूँ। पृथ्वी, वायु, तेज, आकाश मैं नहीं हूँ, मेरा शरीर है। मैं तो चैतन्य रूप चिदानन्द हूँ। मैं तो वह चैतन्य हूँ जो इस बात को समझने लगता है उसको यह अनुभूति होती है कि मैं कौन हूँ? जो अपने आत्म स्वरूप को जानने लगता है उसे आत्मज्ञानी कहते हैं। यह केवल अपने कार्य को साक्षी भाव से करता है।

ठाकुर रामकृष्ण देव जी कहते हैं-

अमि यन्त्र तमि यन्त्री, अमी घर तमि घरनी।
अमी रथ तुमि रथी, जे मन चलाओ ते मन चली।

मैं तो एक यन्त्र हूँ, मेरा शरीर एक यन्त्र है। मेरे भीतर जो काली माँ है, वह उसे चला रही है। वही कार्य करवा रही है। इस रथ पर आरूढ़ एक रथी है जो वास्तव में हमारा स्वरूप है। कार्य रूपी रथ के द्वारा हाथ पैर बाँधकर हमें डाल दिया गया तो जहाँ रथ ले जाएगा। उसे वहाँ जाना पड़ेगा।

ऐसे ही हम इस शरीर में हैं। शरीर द्वारा कार्य हो रहे हैं, हम इस शरीर में आरूढ़ हैं। इसी बात को देखने के लिए श्रीभगवान यहाँ बताते हैं लेकिन हम सब इस बात को इतनी सहजता से नहीं जान सकते। इसी बात को हमें धीरे-धीरे साक्षी भाव से सीखना होगा।

श्रीभगवान कहते हैं यह गुण हमें बाँध कर रखते हैं। संस्कृत में गुण शब्द का अर्थ है रस्सी। जिस प्रकार रस्सी हमें बाँधती है उसी प्रकार यह गुण भी हमें शरीर में बाँध कर रखते हैं। हम मोक्ष चाहते हैं तो बन्धन किसका है, यह जान लेना चाहिए। यह इन्हीं

तीन गुणों का बन्धन है।

3.29

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः(स्), सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्, कृत्स्नविन्न विचालयेत्॥3.29॥

प्रकृति जन्य गुणों से अत्यन्त मोहित हुए अज्ञानी मनुष्य गुणों और कर्मों में आसक्त रहते हैं। उन पूर्णतया न समझने वाले मन्द बुद्धि अज्ञानियों को पूर्णतया जानने वाला ज्ञानी मनुष्य विचलित न करे।

विवेचन:- हम प्रकृति के गुणों के कारण सम्मूढ़ हो जाते हैं, मोहित हो जाते हैं। इसी कारण हम गुणों में और कर्मों में अटक जाते हैं। मैं कर रहा हूँ, मैंने किया, इसी भाव में ही अटक जाते हैं।

ऐसे अटके हुए लोगों को श्रीभगवान कहते हैं कि वह पूर्ण रूप से स्वयं को नहीं जानते हैं। वे मन्दबुद्धि हैं, अज्ञानी हैं ऐसे अपने कर्म में लगे हुए लोगों को विचलित नहीं करना चाहिए, परन्तु हम जो भगवद्गीता पढ़ रहे हैं, हमें समझना चाहिए कि अपने आप में क्या परिवर्तन लाना है।

श्री भगवान यहाँ बताते हैं, हमें अपने शरीर द्वारा होने वाले कर्मों को साक्षी भाव से देखना चाहिए और धीरे-धीरे इस बात को समझने का प्रयास करना चाहिए कि यह कर्म शरीर द्वारा हो रहे हैं मेरे द्वारा नहीं।

इस समय सत्त्व गुण प्रभावी हो गया है इसलिए सात्त्विक कर्म हो रहे हैं। इस समय रजो गुण प्रभावी हो गया है इसलिए राजसी कर्म हो रहे हैं। इस समय तमोगुण प्रभावित हो गया है तो मुझे थकान या नींद आ रही है, आलस्य आ रहा है। ऐसा हमें स्वयं की तरफ देख कर सीखना है।

श्रीमद्भगवद्गीता, दूसरे का कैसा आचरण है यह बताने के लिए नहीं है। हमें कैसे आचरण करना है इसके लिए है। उसके लिए छठवें अध्याय में श्रीभगवान ने स्पष्ट किया है कि स्वयं ने स्वयं का उद्धार करना है। कुछ लोगों को भगवद्गीता सिखाना है लेकिन इसका आचरण कैसे करना है? यह सिखाना और उसका आचरण उन्हें करने देना है।
भगवद्गीता किसे सीखना है या सिखाना है यह श्रीभगवान ने अट्ठारहवें अध्याय में बताया है।

श्रीभगवान अत्यन्त सरल और महत्वपूर्ण बात बताते हैं। एक श्लोक को यदि हम आचरण में लाते हैं तो सम्पूर्ण गीता आचरण में आ जाती है।

3.30

मयि सर्वाणि कर्माणि, सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा, युध्यस्व विगतज्वरः॥3.30॥

(तू) विवेकवती बुद्धि के द्वारा सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्मों को मेरे अर्पण करके कामना रहित, ममता रहित (और) संताप रहित होकर युद्ध रूप कर्तव्य कर्म को कर।

विवेचन:-श्रीभगवान कहते हैं कि तुम दिन भर जो भी सारे कर्म करोगे वह सब अपना मन परमात्मा में लगाकर मुझे अर्पण कर दो।
पिछले अध्यायों में हमने देखा कि जो भी हम कर्तव्य कर्म कर रहे हैं वह श्रीभगवान ने हमें सौंपे हुए हैं। हमें मनुष्य देह प्राप्त हुआ है कुत्ता, बिल्ली आदि नहीं तो मनुष्य का जन्म देकर भगवान हमसे क्या करवाना चाह रहे हैं। जो-जो भी हमारे कर्तव्य कर्म है, वह श्रीभगवान ने हमें दायित्व के रूप में सौंपे हुए हैं। यह भगवान का कार्य है और हम उसी के लिए कर रहे हैं और उनको ही समर्पण कर देना चाहिए।

श्रीभगवान कहते हैं अपना चित्त मुझ में लगा दो। परमात्मा चाहते हैं कि यह कर्म मैं करूँ। सब कुछ श्रीभगवान ने दिया है यही भाव लाकर कर्म करते रहना और श्रीभगवान को अर्पण करते जाना है। जब हमने सब श्रीभगवान को अर्पण कर दिया तो हमारा कर्म हमारा नहीं रहा तो जो भी मिलेगा उसी के द्वारा मिलेगा। उसकी हमें आशा नहीं रखनी चाहिए।

श्रीभगवान कहते हैं कि युद्ध करना भी तो तुम्हारा कर्म है तुम उसे करो। यह सोचकर करो कि युद्ध करना मेरा कर्तव्य है और श्रीभगवान ने मुझे सौंपा है।

अर्जुन योद्धा है और युद्ध प्रारम्भ होने जा रहा है इसलिए श्रीभगवान कहते हैं, हे अर्जुन! तुम्हें युद्ध करना चाहिए, यही तुम्हारा कर्तव्य है और उसे पूरा करके उसे मुझे (श्रीभगवान) को अर्पण कर दो।

जो भी हम नित्य कर्म करते हैं वह श्रीभगवान ने हमें सौंपे हैं और हमें उसे पूरा करके श्रीभगवान को मन ही मन में अर्पण कर देना चाहिए।
एक सुन्दर गीत है-

कर प्रणाम तेरे चरणों में
लगता हूं अब तेरे काज
पालन करने को हे भगवान,
मैं नियुक्त होता हूं तेरे आज ।।

श्रीभगवान को प्रणाम करते हुए यही बात कहना-

अंतर में स्थित होकर मेरी,
बागडोर पकड़े रहना।
निपट निरंकुश चंचल मन को,
सावधान करते रहना।

श्रीभगवान कहाँ हैं?
इसका उत्तर है- श्रीभगवान सर्वत्र हैं। हमारे अन्तरङ्ग में भी हैं।
मेरे अन्तरङ्ग में बैठ कर मेरी बागडोर सम्भाले रखना। मेरी इन्द्रियों को, मेरे मन को, लगाम डाल कर रखना। मेरा मन बड़ा चञ्चल है। आपका काम करते-करते, इधर-उधर भटक जाता है, उसको कर्तव्य करने के लिए याद दिलाते रहना।

अंतर्यामीको अंतस्थित देख,
शशंकित होवे मन।
पापवासना उठते ही हो,
नाश लाज से बह जल।

मन जब देख रहा है कि यह अन्तर्यामी मेरे पास बैठे हुए हैं और मैं कैसे गलत विचार कर सकता हूँ। मन में गलत विचार आना भी अपने आप बन्द हो जाएँगे। जब हम यह सोचकर कार्य करेंगे कि यह श्रीभगवान का है, अपने आप ही कार्य अच्छे होने लग जाएँगे। इसका हम अनुभव कर पाएँगे। इतना सरल कर्मयोग श्रीभगवान ने यहाँ बताया है।

श्रीभगवान कहते हैं जो इतनी सी बात को आचरण में ले आएँगे, उनका सब अच्छा ही होगा।

3.31

ये मे मतमिदं(न्) नित्यम्, अनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो, मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥3.31॥

जो मनुष्य दोष-दृष्टि से रहित होकर श्रद्धापूर्वक मेरे इस (पूर्व श्लोक में वर्णित) मत का सदा अनुसरण करते हैं, वे भी कर्मों के

बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं कि जो यह मेरे मत का अनुसरण करेंगे इसको आचरण में लाएँगे।

भगवद् गीता पढ़े पढ़ायें जीवन में लायें।

जो यह त्रिसूत्र स्वामी जी ने बताया है। गीता जीवन में लाना अर्थात यही करना है कि हर कार्य भगवान के लिए कर रहा हूँ यह कहकर उसको अर्पण कर देना है।

श्रीभगवान कहते हैं कि जो भी मनुष्य नित्य इसका अनुसरण करेगा, वह श्रद्धा युक्त होगा। इसमें कोई भी दोष नहीं देखना चाहिए।
भगवद्गीता सभी के लिए है, किसी विशेष मनुष्य या विशेष धर्म के लिए नहीं है। यह मानव धर्मग्रंथ है। जो दोष को न देखते हुए इसका अनुसरण करेगा तो वह भी कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाएगा।

इसी का अर्थ मोक्ष है। मोक्ष अर्थात मुक्ति।

3.32

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो, नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्, विद्धि नष्टानचेतसः॥3.32॥

परन्तु जो मनुष्य मेरे इस मत में दोष-दृष्टि करते हुए (इसका) अनुष्ठान नहीं करते, उन सम्पूर्ण ज्ञानों में मोहित (और) अविवेकी मनुष्यों को नष्ट हुए (ही) समझो अर्थात् उनका पतन ही होता है।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं कुछ लोग।मन में दोष देखकर मेरे इस मत को अनुसरण में लाने का प्रयास नहीं करते, ऐसे व्यक्ति एकदम मूढ़ होते हैं। हमें अपने हितैषी की बात सुननी चाहिए। श्रीभगवान हमारे हितैषी हैं। वह हमारा हित चाहते हैं, कल्याण चाहते हैं। इस बात को हम जानते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता हमारी माँ है। वह हमारा कल्याण चाहती है। हमें उनका अनुसरण करना चाहिए परन्तु कुछ लोग सुनेंगे। कुछ नहीं सुनेंगे और कुछ लोग सुनकर भी नहीं सुनेंगे, आचरण में भी नहीं लाएँगे। उनका जीवन में कोई ध्येय नहीं है जो आ रहा है, जीवन वैसे ही चल रहा है।

श्रीभगवान कहते हैं उनको वैसे ही जीने दो। उनकी तरफ ध्यान मत दो। दोष न रहते हुए भी दोष देखने वाले ऐसे लोग हैं। तुम अपने कर्तव्य कर्म भगवान के बताए हुए मार्ग पर करते जाओ। जो ऐसे कर्म नहीं करते हैं वह एकदम मूर्ख है। उनका ज्ञान ढक गया है। वह अज्ञान से मोहित है। अज्ञान से उनका ज्ञान नष्ट हो गया है। ऐसा समझ कर उनकी तरफ ध्यान मत दो।

श्रीभगवान कहते हैं, हे अर्जुन! तुम अपना उद्धार करो।
जब हम, जहाँ भवन निर्माण का कार्य चल रहा होता है वहाँ पर जाते हैं तो वहाँ लिखा रहता है कि अपनी सुरक्षा स्वयं करें।
श्रीभगवान कहते हैं, वैसे ही मनुष्य को अपनी प्रकृति के अनुसार कर्म करना पड़ता है।

3.33

सदृशं(ञ्) चेष्टते स्वस्याः(फ्), प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं(यँ) यान्ति भूतानि, निग्रहः(ख्) किं(ङ्) करिष्यति॥3.33॥

सम्पूर्ण प्राणी प्रकृति को प्राप्त होते हैं। ज्ञानी महापुरुष भी अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है। (फिर इसमें) किसी का हठ

क्या करेगा?

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं कि सभी को शरीर अलग-अलग प्राप्त हुआ है और उनके गुणधर्म भी अलग हैं। उनका स्वभाव भी अलग है। अलग-अलग स्वभाव भी हमारे पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार ही है। तीन गुणों (सत्, रज,तम) का प्रमाण कम या ज्यादा होने से मनुष्य का स्वभाव बदल जाता है।

जिस प्रकार भोजन बनाते हुए नमक या मसाले कम या ज्यादा हो जाते हैं तो उसका टेस्ट बदल जाता है वैसे ही हर जीव का स्वभाव अलग-अलग होता है। जो हमारी प्रकृति का स्वभाव होता है उसके अनुसार हम कर्म करते हैं।

जिस प्रकार कुछ बच्चों का स्वभाव होता है कि हर काम में अच्छे होते हैं परन्तु पढ़ाई में अच्छे नहीं होते। कुछ बालक ऐसे होते हैं कि जिन्हें पढ़ाई की बहुत इच्छा होती है। कुछ लोग आलसी होते हैं और कुछ लोग बहुत ज्यादा उत्साही होते हैं। ज्ञानी भी कुछ अलग नहीं करते हैं उनका शरीर जैसा प्राप्त हुआ है उसके स्वभाव के अनुसार ही वह कर्म करते हैं।

श्रीभगवान अर्जुन को याद दिलाते हैं कि वह एक योद्धा है। तुम यदि कहोगे कि मैं युद्ध नहीं करूँगा तो ऐसा नहीं होगा। तुम्हें स्वयं पर नियन्त्रण करना होगा।

श्रीभगवान आगे बताते हैं कि जो हमारे मार्ग पर चलते हुए जो शत्रु या बाधा आती हैं वे कौन है?

3.34

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे, रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्, तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥3.34॥

इन्द्रिय-इन्द्रिय के अर्थ में (प्रत्येक इन्द्रिय के प्रत्येक विषय में) (मनुष्य के) राग और द्वेष व्यवस्था से (अनुकूलता और प्रतिकूलता को लेकर) स्थित हैं। (मनुष्य को) उन दोनों के वश में नहीं होना चाहिये; क्योंकि वे दोनों ही इसके (पारमार्थिक मार्ग में) विघ्न डालने वाले शत्रु हैं।

विवेचन:- हमारी पञ्च ज्ञानेंद्रियाँ हैं उनके पञ्च विषय हैं, **शब्द, रस, स्पर्श, रूप, गन्ध।**

शब्द कानों का विषय है, **स्पर्श** त्वचा का विषय है, **रूप** नेत्रों का विषय है, **रस** जिव्हा का विषय है, **गन्ध** नासिका का विषय है। सबके अलग-अलग विषय हैं। चलना पैरों का काम है।

इन्द्रियाँ और उनके विषय, उनमें **राग द्वेष** यह दो भाव रहते हैं-
राग-अर्थात आसक्ति जो अच्छा लगता है जो विषय इन्द्रियों को अच्छा लगता है, उसमें इन्द्रियाँ आसक्त हो जाती हैं, इसमें रहने की इच्छा होती है।
द्वेष-जो अच्छा नहीं लगता। उसके प्रति मन में द्वेष निर्माण होता है।
इसे राग और द्वेष कहते हैं।

पास रहने की इच्छा को आसक्ति कहते हैं और दूर रखने को द्वेष कहते हैं। यह दो भाव इन्द्रियों और उनके विषयों के बीच में रहते हैं।

श्रीभगवान कहते हैं कि उनके वश में मत आना। केवल अपना कर्तव्य करते जाना, यही इस धर्म योग के मार्ग के लुटेरे हैं उनसे बचकर रहना।

पुजारी को मन्दिर में पूजा करने का कर्तव्य दिया हुआ है और किसी को सफाई का काम मिला है तो यह नहीं सोचना है कि मुझे जो काम मिला है जो मेरे स्वभाव के अनुसार हैं वह कर्तव्य के रूप में मुझे प्राप्त हुआ है, वही मेरे लिए कल्याणकारी है।

3.35

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः(फ्), परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं(म्) श्रेयः(फ्), परधर्मो भयावहः॥3.35॥

अच्छी तरह आचरण में लाये हुए दूसरे के धर्म से गुणों की कमी वाला अपना धर्म श्रेष्ठ है। अपने धर्म में (तो) मरना (भी) कल्याणकारक है (और) दूसरे का धर्म भय को देने वाला है।

विवेचन:-अपना कर्तव्य जैसे, माता का धर्म, **मातृ धर्म**, पिता का धर्म **पितृ धर्म**। **पुत्रधर्म, राष्ट्रधर्म,** ऐसे ही **स्वधर्म** मेरे लिए कल्याणकारी है।
श्रेय का अर्थ है कल्याण।

जिस प्रकार यह नहीं सोचना है सॉफ्टवेयर (software) वाले इन्जीनियर ए सी में बैठकर काम करते हैं और मेरा कंस्ट्रक्शन का काम है और मुझे धूप में घूमना पड़ता है। उनका काम कितना अच्छा है यह आपको नहीं सोचना है। उनको उनका काम मिला है और मुझे मेरा काम मिला है। इसलिए मेरा कर्तव्य (कर्म) ही कल्याणकारी है।

महिलाओं की प्रकृति प्राकृतिक रचना के अनुसार उनको कुछ कर्म प्राकृतिक रूप से प्राप्त हुए हैं। एक महिला ही बालक को जन्म दे सकती है और उस बालक का लालन-पालन भी महिला ही अच्छे से कर सकती है। पुरूष बालक को जन्म नहीं दे सकता। यह तो प्रकृति की रचना है। महिला को बच्चों का पालन-पोषण करना उसका कर्तव्य है। उसे इस भाव से नहीं करना चाहिए कि यह मुझे करना पड़ रहा है। इस भाव से कोई भी माँ इसे नहीं करती।

ऐसे ही जो कर्तव्य कर्म हमें मिला है। उसे हमें अपने लिए कल्याण कारी समझना चाहिए। श्रीभगवान कहते हैं कि अपना कर्तव्य करते-करते यदि मृत्यु भी आ जाए तो भी वह हमारे लिए कल्याणकारी होती है। हर मनुष्य को एक न एक दिन तो मरना ही है और जो मनुष्य अच्छे से जीवन जीते हुए अपना कर्तव्य कर्म निभाते हुए मृत्यु को अपना लेता है, वह सबसे श्रेष्ठ मृत्यु मानी गई है।

दूसरे का काम देखने में कितना भी अच्छा लगता हो वह कल्याणकारी नहीं हो सकता। इसी श्लोक को अट्ठारहवें अध्याय में भगवान ने थोड़ा सा बदल कर कहा है।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं- "एक छोटे बालक की माँ देखने में चाहे कितनी भी कुरूप हो, तो भी उस बच्चे के लिए उस माँ का ही स्पर्श सबसे अच्छा लगता है।"

घी में पानी से ज्यादा ही गुण है। उससे महँगा भी है परन्तु एक मछली के लिए पानी ही कल्याणकारी है। वह घी में नहीं रह सकती। उसके लिए पानी ही चाहिए। वैसे ही हर जीव के लिए जो उसका स्वधर्म है, जो उसका कर्तव्य है, वही उसके लिए कल्याणकारी है।

अर्जुन के मन में विचार आया, क्या यह इतना सरल है कि अपने स्वभाव के अनुसार ही उसे कर्म करते जाना है और श्रीभगवान के लिए ही करना है। इतना ही भाव रखते हुए करना है तो इतना सब होते हुए भी मनुष्य पाप करने के लिए क्यों प्रवृत्त होता है। मनुष्य की इच्छा न होते हुए भी वह पाप कर लेता है। वह ऐसा क्यों करता है?

इसलिए अर्जुन श्रीभगवान से प्रश्न पूछते हैं-

3.36

अर्जुन उवाच
अथ केन प्रयुक्तोऽयं(म्), पापं(ञ्) चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय, बलादिव नियोजितः॥3.36॥

अर्जुन बोले - हे वार्ष्णेय ! फिर यह मनुष्य न चाहता हुआ भी जबर्दस्ती लगाये हुए की तरह किससे प्रेरित होकर पाप का आचरण करता है?

विवेचन:- अर्जुन श्रीभगवान से प्रश्न पूछते हैं - ऐसी कौन सी बात है जिसके कारण मनुष्य पाप करता है? जिसके द्वारा वह प्रेरणा लेता है और पाप करता है। पाप करने की प्रेरणा मनुष्य को कहाँ से मिलती है? जीव पाप क्यों करता है? हर बार पाप करने वाले मनुष्य की अपनी इच्छा नहीं होती है, परन्तु उससे पाप हो जाता है और जो हो जाता है वह किसके द्वारा करवाया जाता है? उसको कौन पाप करने के लिए प्रवृत्त करता है?

हमें पता होता है कि अभी काम का समय है तो हमें टीवी के पास नहीं बैठना है परन्तु फिर भी हम बैठ जाते हैं ऐसा क्यों होता है? कि जो काम हमें नहीं करना है वह भी हम करते रहते हैं ।
अर्जुन के इस प्रश्न का उत्तर भगवान स्पष्ट रूप में देते हैं-

3.37

श्रीभगवानुवाच
काम एष क्रोध एष, रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा, विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥3.37॥

श्रीभगवान् बोले – रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम अर्थात् कामना (ही पाप का कारण है)। यह (काम ही) क्रोध (में परिणत होता) है। (यह) बहुत खाने वाला (और) महापापी है। इस विषय में (तू) इसको (ही) वैरी जान।

विवेचन:- इच्छा पूरी न होने के कारण, कामना के कारण क्रोध होता है। जबकि हमें पता है कि यह इच्छाएं कभी पूर्ण नहीं हो सकती।

एक इच्छा पूरी होते ही दूसरी इच्छा जागृत हो जाती है और दूसरी के पश्चात तीसरी जागृत हो जाती है। यह क्रम सतत् चलता रहता है।
श्रीभगवान कहते हैं यह काम, क्रोध रजोगुण से उत्पन्न होते हैं। रजोगुण का त्याग तो नहीं हो सकता क्योंकि इन तीन गुणों के साथ हमें रहना ही पड़ेगा। सही काम न करते हुए गलत काम करने की प्रेरणा यह रजोगुण के कारण ही होती है।

क्रोध के कारण ही हमसे सारी गलतियाँ हो जाती हैं। काम और क्रोध में मनुष्य जो काम नहीं करना चाहिए वही कार्य कर बैठता है।

रजोगुण से उत्पन्न होने वाले दोष हैं- बहुत ज्यादा खाने वाले अत्यन्त पापी है उन्हें इस लोक का शत्रु जान लो। काम और क्रोध हमारे शत्रु हैं इससे या तो दूर रहो या इन पर विजय प्राप्त कर लो।

यह सब बातें श्रीभगवान अगले श्लोक में बताते हैं।

3.38

धूमेनाव्रियते वह्निः(र्), यथादर्शो मलेन च।

यथोल्बेनावृतो गर्भः(स्), तथा तेनेदमावृतम्॥3.38॥

जैसे धुएँ से अग्नि और मैल से दर्पण ढका जाता है (तथा) जैसे जेर से गर्भ ढका रहता है, ऐसे ही उस कामना के द्वारा यह (ज्ञान अर्थात् विवेक) ढका हुआ है।

विवेचन:- जैसे धुएँ के कारण व्यक्ति ढक जाता है। ऐसे ही जब दर्पण पर धूल जम जाती है तो हम स्वयं को नहीं देख सकते।

इसी प्रकार कुछ मनुष्यों का ज्ञान ढका हुआ रहता है। काम और क्रोध हमारे ज्ञान को ढक देते हैं। ज्ञान हमारे भीतर होते हुए भी हम उसे प्राप्त नहीं कर सकते। जैसे लालटेन के काँच पर काजल जमा हो जाता है तो लालटेन का प्रकाश ठीक से दिखाई नहीं देता।। वैसे ही हमारे ज्ञान के ऊपर काम क्रोध का आवरण चढ़ जाता है तो हमारा विवेक ढक जाता है तो हम सही क्या है और गलत क्या है सब भूल जाते हैं।

3.39

आवृतं(ञ्) ज्ञानमेतेन, ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय, दुष्पूरेणानलेन च॥3.39॥

हे कुन्तीनन्दन ! इस अग्नि के (समान) (कभी) तृप्त न होने वाले और विवेकियों के कामना रूप नित्य वैरी के द्वारा (मनुष्य) का विवेक ढका हुआ है।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं कि यह काम कैसा है यह दुष्पूर्ण अग्नि के जैसा है।
दुष्पूर्ण अर्थात कभी न खत्म होने वाला।

अग्नि में आप कुछ भी डालते हैं जो वह सब भस्म ही करता जाता है। जैसे अग्नि में तेल डालो तो और भड़क जाती है तो ऐसे ही यह कामनाएँ हैं जो बढ़ती ही जाती है। कभी पूर्ण न होने वाला अग्नि जैसा होता है वैसे ही यह कामरूप अग्नि, उसने हमारे ज्ञान को आवृत कर दिया है। ज्ञान को ढक दिया है।

यह ज्ञानी का नित्य वैरी है। यदि हमें ज्ञान प्राप्त करना है तो हमारे मार्ग में आने वाला सबसे बड़ा शत्रु है। इसने ज्ञान पर काम रूपी आवरण चढ़ा दिया है। यदि काम को जीतना है तो कैसे जीतेंगे?
श्रीभगवान आगे बताते हैं -

3.40

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः(र्), अस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष, ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥3.40॥

इन्द्रियाँ, मन (और) बुद्धि इस कामना के वास स्थान कहे गये हैं। यह कामना इन (इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि) के द्वारा ज्ञान को ढककर देहाभिमानी मनुष्य को मोहित करती है।

विवेचनः- देहिन अर्थात जीवात्मा
देह में रहने वाला देही। देह हमारी है और हम देही हैं। देह में रहने वाले हैं। हम आत्म स्वरूप हैं।

श्रीभगवान कहते हैं कि इन्द्रियाँ हमारी आँख, कान, नाक, देह, त्वचा, हमारा मन, हमारी बुद्धि। यह इनका अधिष्ठान है इनके छिपने और रहने की जगह है।

यह शत्रु इन्द्रियों में छुप कर बैठता है। मन में छुपकर बैठता है, बुद्धि में घुस जाता है। जो जो चीज नहीं खानी चाहिए, यह खाने

योग्य नहीं तो भी इन्द्रियों के सामने आती है तो आँखें देखती हैं और जिह्वा ललचा जाती है और मनुष्य खा लेता है।

यह गलती उससे हो जाती है। शुगर है तो मिठाई नहीं खानी चाहिए। लेकिन रसगुल्ला सामने आता है तो जिह्वा ललचा ही जाती है, आँखें देख लेती हैं और मन बोलता है खा ले बेटा।
इसे करवाने वाले **काम** और **कामना-** यह इन्द्रियों में रहते हैं, मन में रहते हैं, बुद्धि में रहते हैं यह इन्द्रियों को मोहित कर देते हैं। मनुष्य को मोह में डाल देते हैं। मनुष्य के ज्ञान को ढक देते हैं और उससे गलत काम करवाते हैं तो हमें इस काम में विजय प्राप्त करना होगा।
श्रीभगवान आगे बताते हैं-

3.41

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ, नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं(म्) प्रजहि ह्येनं(ञ्), ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥3.41॥

इसलिये हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! तू सबसे पहले इन्द्रियों को वश में करके इस ज्ञान और विज्ञान का नाश करने वाले महान पापी काम को अवश्य ही बलपूर्वक मार डाल।

विवेचन:-श्री भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! तुम सबसे पहले तुम इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने का प्रयास करो, इन्द्रियों को नियन्त्रित करना सीखो। आत्मसंयम योग सीखो। यही योग की पहली पायदान है, इसी से योग प्रारम्भ होता है **यम**, **नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि**। यह अष्टाँग योग है। इसके द्वारा स्वयं को अनुशासित करना पड़ेगा। इन्द्रियों को नियमित करना पड़ेगा। हमारी संस्कृति में अलग-अलग प्रकार के व्रत बताए गए हैं।

क्या भगवान को यह व्रत प्रिय हैं?
व्रत का आचरण करने से हम स्वयं पर नियन्त्रण लाना सीखते हैं। स्वयं को अनुशासित करना सीखते हैं। एकादशी का दिन है उस दिन केवल फलाहार करना है उस दिन अन्न का उपयोग नहीं करेंगे। उसके बारे में सोचेंगे भी नहीं। यह स्वयं पर नियन्त्रण करने का अभ्यास है। इसलिए व्रत का महत्व है। यह ज्ञान विज्ञान का नाश करने वाला पापी जो काम है इसे समाप्त कर देना होगा। उस पर विजय प्राप्त करो।
श्रीभगवान आगे इस पर विजय प्राप्त करने की बात समझाते हैं-

3.42

इन्द्रियाणि पराण्याहुः(र्), इन्द्रियेभ्यः(फ्) परं(म्) मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिः(र्), यो बुद्धेः(फ्) परतस्तु सः॥3.42॥

इन्द्रियों को (स्थूल शरीर से) पर (श्रेष्ठ, सबल, प्रकाशक, व्यापक तथा सूक्ष्म) कहते हैं। इन्द्रियों से पर मन है, मन से भी पर बुद्धि है (औऱ) जो बुद्धि से भी पर है, वह (आत्मा) है।

विवेचन:- हमारा स्थूल शरीर, उससे सूक्ष्म, उससे पावरफुल (शक्तिशाली) क्या है- वह हमारी इन्द्रियाँ हैं। हमारी देह में सारे अवयव है। हमारी आँख, हमारे कान, हमारी त्वचा यह हमारे महत्वपूर्ण अवयव है। महत्वपूर्ण इन्द्रियाँ है, यह स्थूल शरीर से श्रेष्ठ है।

इन्द्रियों से श्रेष्ठ क्या है? वह है हमारा मन। यह इन्द्रियों से भी ज्यादा शक्तिशाली है। यदि मन ने ठान लिया इस कि विषय को हाथ नहीं लगाना है। यदि मन का निश्चय होगा तो इन्द्रियाँ रुक जाएँगी। मन इन्द्रियों से सूक्ष्म है परन्तु शक्तिशाली है। इन्द्रियों से श्रेष्ठ है।

मन से भी श्रेष्ठ बुद्धि है। हमारा विवेक बुद्धि में ही रहता है। यदि बुद्धि विवेकवती है तो सही क्या है? गलत क्या है? यह बात मन

को बताती है। मन ने यदि बुद्धि की बात सुन ली तो वह इन्द्रियों को भी रोक सकता है।
बुद्धि से भी श्रेष्ठ है आत्मा- **सः- वह** जो भी विचार वान है, उन्होंने विचार किया कि जो बुद्धि से भी श्रेष्ठ है वह है काम। जब यह इच्छा हो जाती है तो वह बुद्धि की भी नहीं सुनता है।

किसी ने कहा, नहीं। उससे भी श्रेष्ठ है अर्थात आत्मा अर्थात जीवात्मा। इसका अर्थ एक ही निकलता है यही श्लोक की विशेषता है।

3.43

एवं(म्) बुद्धेः(फ्) परं(म्) बुद्ध्वा, संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं(म्) महाबाहो, कामरूपं(न्) दुरासदम्॥3.43॥

इस तरह बुद्धि से पर (आत्मा) को जानकर अपने द्वारा अपने आपको को वश में करके हे महाबाहो ! (तू इस) कामरूप दुर्जय शत्रु को मार डाल।

विवेचन:- एवम् अर्थात इस प्रकार से। इस प्रकार से हमने क्या जाना?
शरीर से इन्द्रियाँ श्रेष्ठ, इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ, मन से बुद्धि श्रेष्ठ, बुद्धि से काम या जीवात्मा श्रेष्ठ होती है। जो बुद्धि से भी श्रेष्ठ है इसको पहचानो। स्वयं के द्वारा उस परमात्मा का चिन्तन करो। स्वयं को परमात्मा में लगाओ। परमात्मा में अपने चित्त को लगाओ। बुद्धि से ऊपर काम को जानो और उस पर ध्यान न देते हुए परमात्मा में चित्त को लगाओ। अपना मन को अच्छे से भगवान में स्थापित करो।

श्रीभगवान कहते हैं, हे अर्जुन! हे महाबाहो! तुम अपने इस काम रूपी शत्रु को समाप्त कर दो। यह इतना आसान नहीं है इसे जीतना बहुत कठिन है। परन्तु तुम बलशाली हो, तुम अपनी स्वयं की इन्द्रियों को जानकर, अपने मन को जानकर, बुद्धि को परमात्मा में लगाकर इस शत्रु को समाप्त कर दो। हमारा मन और बुद्धि भगवान में लग गई तो यह काम अपने आप मर जाता है। इसका एक प्रयोग मैं बताता हूँ। मन में कभी कोई कामना, वासना या इच्छा जागृत हो गई तो भी इसे नहीं करना चाहिए। इस समय अपने आराध्यदेव का संस्मरण करो तो वह कामना धीरे-धीरे अपने आप समाप्त हो जाएगी।

श्रीभगवान कहते हैं कि काम रुपी शत्रु को तुम समाप्त कर सकते हो। इसके लिए अपने मन को और बुद्धि को श्रीभगवान का स्मरण करने में लगाओ।
योग में इस क्रिया को प्रत्याहार कहते हैं। इन्द्रियों को आहार न देते हुए उन्हें अन्तर्मुख करते हुए श्रीभगवान में लगा देना। जब मन, बुद्धि श्रीभगवान में लग जाती है तो इन्द्रियाँ भी श्रीभगवान में लग जाती हैं और अपने आप ही सारे गलत विचार समाप्त हो जाते हैं।

जीवन में यदि सफलता प्राप्त करनी है तो यह एक राजमार्ग है। सुबह उठकर भगवान का स्मरण करके कि आज मैं जो दिन भर कर्म करूँगा। वही करूँगा जो भगवान, आपने मुझे दिए हुए हैं। जो कर्म करने के लिए मैं नियुक्त हुआ हूँ। यही भाव लाकर एक-एक कर्म करते हुए मन ही मन उसको श्रीभगवान को अर्पण करते जाओ। यदि मन ही मन अर्पण करना भूल गए तो रात को सोते समय, फिर भगवान को याद करो और पूरे दिन में जो कार्य किए हैं उनको श्रीभगवान के अर्पण कर दो।

श्रीभगवान को अर्पण करते ही हमें मुक्ति का आनन्द हो जाएगा क्योंकि सभी काम श्रीभगवान जी को दे दिए। अब हे भगवान! आपको जो करना है वही करें।
यही मोक्ष है। यही सब करने की शक्ति, इच्छा श्रीभगवान हमें दें।
इस प्रकार की प्रार्थना उन्हीं के चरणों में करते हुए आज के विवेचन सत्र का समापन हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- पुष्पलता दीदी

प्रश्न- हम साक्षी भाव को अपने में कैसे विकसित करें?

उत्तर- श्रीभगवान ने बताया- अपने समस्त कर्त्तव्य कर्मों को करते हुए भगवान को अर्पण करना, एवम् अपना कर्तृत्व भी श्रीभगवान को अर्पित कर देना, क्योंकि कर्तव्य कर्म हम नहीं हमारा शरीर करता है। इसका कर्ता मैं नहीं हूँ। आपने जैसा करवाया वैसा किया। ऐसा करने पर साक्षी भाव विकसित हो जाता है- "करते हो तुम कन्हैया मेरा नाम हो रहा है"

जब अच्छा काम होता है, तो हम कहते हैं कि हमने किया, किन्तु जब त्रुटि हो जाती है, तो दूसरों पर डालने लगते हैं। श्रीभगवान से कहते हैं कि मुझसे यह ग़लत काम कैसे करवाया। आपका आपको अर्पण कर देने से ही साक्षी भाव आता है। यह धीरे-धीरे ही आता है, कई जन्म भी लग सकते हैं। इसको जीवन में लाने से मन प्रसन्न रहने लगता है। सन्त तुकाराम जी कहते हैं कि ये पञ्छी जो मधुर-मधुर गीत गाते हैं उससे गीत गवाने वाला कोई और है, इसी तरह हमसे भी अच्छे कार्य कराने वाला कोई और है। वह श्रीभगवान ही सब करवाते हैं। हमें उसे जानना है, उससे एकरूप होना है, यही योग है। इसके तीन कदम हैं-

1- बिना कर्म किये रहना नहीं

2- हमें कर्त्तव्य कर्म ही करना

3- श्रीभगवान को सब कुछ अर्पित करना।

प्रश्नकर्ता - श्रीवेनी दीदी

प्रश्न- श्रीगीता जी को पढ़ने का जो क्रम यहाँ बताया जाता है, क्या वैसे ही हमेशा पढ़ना चाहिए?

उत्तर- पढ़ना सीखने के लिए यही नियम है, पहले से ही ऐसे ही सिखाया जा रहा है। मेरे पिताजी ने भी हमें ऐसे ही पढ़ाया। यह पढ़ने समझने में सरल है। बाद में किसी हम क्रम से पढ़ सकते हैं।

प्रश्नोत्तर- राकेश कुमार

प्रश्न- कर्म कर्त्तव्य में क्या अन्तर है?

उत्तर- हम जो भी करते हैं वह कर्म है। वह अच्छा या बुरा भी हो सकता है, जैसे शराब पीना एक बुरा कर्म है, दूसरों की सेवा करना अच्छा कर्म है। कर्त्तव्य का तात्पर्य है करने योग्य- कृ धातु में तव्य प्रत्यय लगने के बाद वह कर्त्तव्य हो जाता है, जैसे गन्तव्य ज्ञातव्य। कर्त्तव्य और कार्य एक हैं।

प्रश्नकर्ता-विक्रम कुमार

प्रश्न- मेरे घर में अनेक देवी-देवता स्थित हैं, क्या सबकी अलग-अलग आरती करनी चाहिए?

उत्तर- सभी देवी-देवता एक ही हैं। हम सबकी या एक की भी आरती कर सकते हैं, यह अपने समय आनन्द एवम् भावना पर निर्भर करता है। यह सब हमें योग की ओर ले जाते हैं, नियम का पालन करने से हम अनुशासित होते हैं। सेना में भी नियम का पालन करने से ही अनुशासन आता है।

।। "ॐ श्री कृष्णार्पणमस्तु"।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्याय:॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'कर्मयोग' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||